

वर्ण व्यवस्था मे सदस्यो के कर्तव्य एवं अधिकार

प्रभा चतुर्वेदी

शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान।

सारांश- शंखस्मृति में वर्णित वर्णव्यवस्था एक आदर्श समाज का स्वरूप प्रस्तुत करती है। जहाँ प्रत्येक वर्ग को अपनी योग्यता एवं कार्य के आधार पर स्थान प्राप्त था। जिस वर्ण के कार्य एवं भूमिका जितनी महत्वपूर्ण रही, उसे उतना ही उच्च स्थान दिया गया और अपने-अपने दायित्व-निर्वाह के लिए कुछ विशेष अधिकार एवं सुविधाएँ प्रदान की गईं। ये अधिकार किसी दूसरे वर्ण के अधिकारों का हनन करने के लिए नहीं अपितु स्व-स्व धर्म के रक्षार्थ दिये गये थे। सभी वर्ण एक-दूसरे के सहयोगपूर्वक स्वधर्म का पालन करते थे। यही कारण है कि सभी वर्गों के एक-दूसरे से सम्बद्ध होने पर तत्कालीन समाज प्रतिस्पर्धा जैसी भयावह दोषों से सुरक्षित रहा।

मुख्य शब्द- वर्ण, व्यवस्था, सदस्य, कर्तव्य, अधिकार, वर्णव्यवस्था, समाज, धर्म।

ब्राह्मण : धर्म एवं ज्ञान के प्रतिष्ठापक होने तथा आध्यात्म की ओर उन्मुख रहने के कारण ब्राह्मणों का समाज में सर्वोच्च स्थान था। जन्म से ही अन्य वर्गों की अपेक्षा उन्हें अधिक आदर-सम्मान का पात्र माना गया था। वैदिक¹ एवं धर्मशास्त्रीय² साहित्य में सर्वत्र उसकी श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए, उसे देवता स्वरूप माना गया है। महर्षि शंख ने अन्य वर्गों की अपेक्षा ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए, उसे सभी वर्गों का स्वामी कहा है³ और ब्राह्मण वर्ग में भी पंक्ति को पवित्र करने वाले ब्राह्मण को श्रेष्ठ स्थान दिया है। उनके अनुसार जो वेद-वेदाङ्गों में पाराङ्गत व उनका अध्ययन करने वाला, मन्त्रोच्चारण व ऋचाओं का ज्ञाता, ज्येष्ठ-साम मन्त्रों का गान करने वाला व पवित्र अग्नियों में यज्ञ करने वाला तथा ब्राह्म-विवाह से उत्पन्न है, वही पंक्तिपावन ब्राह्मण है।⁴ उन्होंने अनध्याय काल में अध्ययन करने वाले, पवित्रता एवं आचार से हीन, शूद्रों के अन्न से परिपुष्ट होने वाले ब्राह्मण की निन्दा की है और विद्वान् (वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता), नित्य योग में रत, सम दृष्टि रखने वाले, ध्यानशील, संयमी, ज्ञानवान् ब्राह्मण की प्रशंसा की है।⁵ इससे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण सदैव सम्मान के योग्य था।

शंखस्मृति के अनुसार ब्राह्मण के लिए यज्ञ करना व कराना, दान देना व लेना तथा वेद का अध्ययन करना व कराना-ये छः कर्म विहित थे।⁶ मनु ने भी इन्हीं कर्मों का उपदेश किया है⁷, किन्तु मनु एवं शंख की तालिका में क्रमभेद प्राप्त होता है। शंख ने जहाँ यजन-याजन को प्रथम स्थान दिया है वहीं मनु ने अध्यापन-अध्ययन को प्रथम स्थान दिया है। इन वर्णित कर्मों में से यज्ञ कराना, दान लेना एवं वेदाध्ययन कराना ब्राह्मण की जीविका के साधन थे। इसके अतिरिक्त यज्ञ करना, दान देना एवं वेदाध्ययन करना उसके आवश्यक कर्तव्य या धर्म थे। अतएव उसके लिए आत्म-कल्याण की दृष्टि से यज्ञ करना, दान लेना व अध्ययन करना तथा सामाजिक-कल्याण की दृष्टि से यज्ञ कराना, दान देना व अध्ययन कराना आवश्यक था।

शंखस्मृति में ब्राह्मणों के षट्कर्मों में सर्वप्रथम यज्ञ को स्थान दिया गया है और यज्ञ करना तथा करवाना उसका परमधर्म माना गया है। ब्राह्मण के लिए ही नहीं अपितु क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए भी यज्ञ करना अनिवार्य था, क्योंकि यज्ञ पाप का नाशक तथा अमरत्व को दिलाने वाला है।⁸ वह समस्त कामनाओं की पूर्ति तथा कल्याण का हेतु है।⁹ अतएव इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट के परिहार हेतु यज्ञ आवश्यक था। एक द्विज के लिए यज्ञकर्म ब्रह्मचर्यावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता था।¹⁰ नाचिकेत अग्नि में तीन बार यजन करने वाला एवं पाँच पवित्र अग्नियों में यज्ञ करने वाला श्रेष्ठ ब्राह्मण माना जाता था। इसके विपरीत यज्ञकर्म को न करने वाला निन्दित माना जाता था।¹¹ एक गृहस्थ द्विज के लिए 'अग्निहोत्र', 'दर्शपौर्णमास', 'पशुबन्ध', 'चातुर्मास्य यज्ञों तथा अन्य यज्ञों (आग्रहायण, अग्निष्टोमादि) को करने का विधान था, किन्तु उसे निर्देश दिया गया है कि यदि इन धार्मिक कार्यों के लिए उसके पास अत्यल्प धन है तो वह वैश्वानरी इष्टि का अनुष्ठान करे, पर शूद्र से धन की याचना न करे।¹² इससे सिद्ध होता है कि तत्कालीन समय में शूद्र से यज्ञ के लिए धन लेना गृहित माना जाता था, परन्तु शूद्र से बिना याचना किये यज्ञ के लिए धन मिलने पर उसे शास्त्रविरुद्ध नहीं माना जाता होगा अपितु यज्ञ सम्पादन में उसका प्रयोग कर लिया जाता होगा। मनु ने भी इन्हीं यज्ञों को करने का विधान किया है और यज्ञ के लिए शूद्र से धन की याचना का निषेध किया है, क्योंकि शूद्र से धन लेकर यज्ञ करने वाला ब्राह्मण मरणोपरान्त चाण्डाल बनता है।¹³ इसके विपरीत उन्होंने यह भी कहा है कि यज्ञ के लिए धनाभाव होने पर किसी से भी धन लिया जा सकता है, यहाँ तक कि शूद्र के घर से भी।' जबकि शंख ने इस प्रकार की कोई छूट नहीं दी है।

शंख ने याजन के विषय में ब्राह्मण को उपदेश दिया है कि वह सदैव उसी का यज्ञ कराए, जिसने शूद्र से धन की याचना न की हो, परम्परागत आजीविका का परित्याग न किया हो वरन् कर्म एवं जन्म से उसका नियमपूर्वक पालन करते हुए, धनार्जित किया हो।¹⁴ इस याजन कर्म के सम्पादन से ही ब्राह्मण दक्षिणारूप में विभिन्न वस्तुओं को प्राप्त करता था, जिससे वह अपनी आजीविका के साथ-साथ दान देकर लोक का कल्याण करता था।

यज्ञ के समान दान देना व लेना भी ब्राह्मण का आवश्यक कर्तव्य था। ब्राह्मण के समान क्षत्रिय एवं वैश्य को भी दान देना होता था, तभी तो महर्षि ने गृहस्थाश्रम में निवास करने वाले गृहस्थी को श्रेष्ठ माना है, क्योंकि गृहस्थी ही दान देने में समर्थ होता है। उसकी कृपा से ही अन्य आश्रमों का परिपालन होता है।¹⁵ दान किसे दिया जाए? इसका विचार शंख ने नहीं किया है, किन्तु अन्य स्मृतिकारों ने दान एक योग्य पात्र को ही देने का विधान किया है कुपात्र को नहीं।¹⁶ ऐसा माना जाता है कि कुपात्र को दिया गया दान सात पीढ़ी तक को नष्ट कर देता है। जबकि एक योग्य पात्र को दिया गया दान पुण्य फल को देने वाला होता है।¹⁷ इसलिये सुपात्रों माता-पिता, गुरु, मित्र, चरित्रवान् व्यक्ति, उपकारी, दीन (दरिद्र), अनाथ और विशिष्ट गुण वाले व्यक्ति को दान देना चाहिए, कुपात्रों-धूर्तों, वन्दियों (वन्दना करने वाले), मन्दबुद्धियों, कुवैद्यों, जुआरियों, वञ्चकों, चापलूसों, चारणों, चोरों को नहीं।¹⁸ अतएव दान किसी भी दशा में मुख को न देकर गुणवान् को देना चाहिए।

दूसरी ओर महर्षि शंख ने दान ग्रहण करने के सम्बन्ध में निर्देश दिया है कि ब्राह्मण उसी से दान ग्रहण करे, जिसने अपनी वर्ण की वृत्ति का पालन करते हुए, धर्मानुसार धनार्जित किया हो।¹⁹ इसी प्रकार मन्वादि धर्मशास्त्रकारों ने दान लेने का तो विधान किया है, परन्तु उसे उत्तम नहीं माना, क्योंकि उनका मानना था कि दान लेने से ब्राह्मण का ब्रह्मतेज नष्ट हो जाता है।²⁰ शंखस्मृति में दान लेने के कुफल का वर्णन नहीं मिलता, जिससे स्पष्ट होता है कि इस समय दान की भावना का कोई महत्त्व नहीं रह गया था, वह मात्र क्रिया या आडम्बर बनकर रह गया था।

ब्राह्मण के लिए यज्ञ एवं दान के अतिरिक्त अध्ययन व अध्यापन कर्म अनिवार्य था। शंखस्मृति में ब्राह्मण के लिए वेदाध्ययन को परमावश्यक मानते हुए कहा गया है कि ब्राह्मण को षड्वेदाङ्गों-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष सहित चारों वेदों-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद में पाराङ्गत होना चाहिए, उसे ऋग्वैदिक मन्त्रों²¹ के उच्चारण के

साथ-साथ बहुत सी ऋचाओं का ज्ञान होना चाहिए तथा वह ज्येष्ठ साम मन्त्रों²² का गान करने वाला होना चाहिए। यहाँ पर ऋग्वैदिक मन्त्रों में तीन मन्त्रों के उच्चारण को विशेष स्थान दिया गया है जिसमें यज्ञवेदिका, प्राणवायुरूप देवता तथा जगत् के पालनकर्ता परमेश्वर का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार ज्येष्ठ साम मन्त्रों में प्रजापति विषयक वर्णन उपलब्ध होता है।

मनु ने तो ब्राह्मण के लिए वेदाध्ययन को परमधर्म तथा अन्य को उपधर्म कहा है।²³ याज्ञवल्क्य का मानना है कि विधाता ने ब्राह्मणों को वेदों की रक्षा, देवों एवं पितरों की तुष्टि तथा धर्म की रक्षा के लिए ही उत्पन्न किया है।²⁴ महाभाष्यकार ने तो ब्राह्मणों को बिना किसी कारण के धर्म, वेद एवं वेदाङ्गों का अध्ययन करने को कहा है²⁵, क्योंकि जो ब्राह्मण नित्य वेद का अध्ययन न करके अन्य शास्त्रों में व्यर्थ ही परिश्रम करता है वह अपने जीवनकाल में परिवार सहित शूद्रत्व को प्राप्त करता है।²⁶ यद्यपि वेदाध्ययन का अधिकार तीनों द्विजातियों को था, किन्तु अध्यापन का अधिकार मात्र ब्राह्मण वर्ग को था। गुरु शिष्य का उपनयन करके, शौच, आचार, यज्ञकर्म एवं सन्ध्योपासना की शिक्षा देकर उसे वेद का ज्ञान प्रदान करता था।²⁷ शिष्य को यह ज्ञान विधिवत् ग्रहण करना होता था। वह गुरु से आज्ञा लेकर, ब्रह्माञ्जलि बनाकर, नतमस्तक होकर, गुरु के मुख को देखते हुए, स्वाध्याय करता था। वेदपाठ के आरम्भ तथा समाप्ति पर 'ओम्' का उच्चारण करता था, पर उसके लिए अनध्याय के समय अध्ययन का निषेध था।²⁸ अध्यापन विषयक इसी प्रकार के विचार मनु ने भी अभिव्यक्त किये हैं।²⁹ इस प्रकार अध्यापन विषयक उसके तीन प्रमुख उद्देश्य थे-धर्म ज्ञान, अर्थ लाभ और परोपकारार्थ । वस्तुतः ब्राह्मण प्राचीनकाल से ही सरल एवं सात्त्विक जीवन व्यतीत करते हुए, अपने ज्ञान एवं तप की साधना से मानव समाज को सत्पथ पर अग्रसर करते रहे हैं। युगों-युगों से चली आयी संस्कृति के विकास, संरक्षण एवं संवर्धन का श्रेय ब्राह्मण वर्ग को ही जाता है।

क्षत्रिय : महत्त्व की दृष्टि से द्विजातियों में ब्राह्मण के पश्चात् क्षत्रिय का द्वितीय स्थान था। जिस प्रकार ब्राह्मणों का स्थान अपने धर्म एवं विद्या की साधना तथा प्रजा में उसके बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा, उसी प्रकार देश की सुरक्षा एवं उसके संचालन तथा सामाजिक, सांस्कृतिक उत्थान की दृष्टि से क्षत्रिय की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। सुरक्षा के अभाव में न तो मनुष्य अपने योगक्षेम को सिद्ध करने में समर्थ हो सकता है, न अभ्युदय एवं निःश्रेयस को प्राप्त कर सकता है और न ही सामाजिक व्यवस्था चल सकती है। अतएव समाज व राष्ट्र का कल्याण सुरक्षा पर आधारित है। जो क्षत्रिय का स्वाभाविक कर्म था। कहा गया है कि जो क्षत् (संकट) से रक्षा करे, वही क्षत्रिय है।³⁰ शंखस्मृति में क्षत्रिय और राजा दो शब्द आये हैं³¹ जो भिन्न अर्थ के नहीं अपितु एक अर्थ के ही वाचक हैं। क्षत्रिय ही राजा है।³² क्षत्रिय की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए, ब्राह्मण को धर्म का मूल एवं क्षत्रिय को धर्म का अग्रभाग कहा गया है और इन्हें एक-दूसरे की समृद्धि का हेतु माना गया है³³, क्योंकि ब्राह्मण धर्म का मार्ग प्रशस्त करता है तो क्षत्रिय उसी धर्म की रक्षा कर उसका संवर्धन करता है। बिना सुरक्षा व शान्ति के धर्म की वृद्धि होना असम्भव है। इसलिये क्षत्रिय के प्रति धर्म की रक्षा का उपदेश दिया गया है। क्षत्रियों ने ही धर्म का अनुसरण कर अपने पराक्रम एवं बाहुबल से सज्जनों की रक्षा तथा दुर्जनों का दमन कर समाज एवं राष्ट्र की सुरक्षा-व्यवस्था को स्थिरता प्रदान की।

शंखस्मृति में प्रजा की रक्षा करना, दान देना, वेद पढ़ना एवं विधिवत् यज्ञ करना क्षत्रिय के कर्म कहे गये हैं।³⁴ मनु ने शंख विहित कर्मों के अतिरिक्त विषयों में 'आसक्त न होना' को भी स्वीकार किया है³⁵, क्योंकि विषयों में आसक्त राजा शासन का संचालन नहीं कर सकता। इनमें से प्रजा की रक्षा करना क्षत्रिय की वृत्ति थी, जबकि दान देना, वेदाध्ययन एवं यज्ञ करना उसका धर्म था। इस प्रकार तत्कालीन समय में उसे दान देने, वेदाध्ययन करने एवं यज्ञ करने का तो अधिकार प्राप्त था, परन्तु उसे दान लेने, वेदाध्यापन एवं यज्ञ कराने का अधिकार नहीं था, क्योंकि ये कर्म ब्राह्मणमात्र के लिए विहित थे। वह प्रजापालन के द्वारा ही अपनी जीविका चला सकता था। शंखस्मृति में प्रजापालन के महत्त्व को प्रदर्शित करते हुए कहा गया है कि "राजा न व्रतों, न उपवासों और न ही विविध प्रकार के यज्ञों से स्वर्ग को प्राप्त करता है। वह तो प्रजाओं के परिपालन से ही स्वर्ग को

प्राप्त करता है।³⁶ एक स्थान पर आए वर्णन से ज्ञात होता है कि युद्ध के समय एक कुशल, निर्भीक, साहसी, धैर्य से युक्त योद्धा ही प्रशंसनीय माना जाता था, तभी तो महर्षि ने प्राणों के रक्षार्थ कायरतापूर्ण व्यवहार करने वाले क्षत्रिय को निन्दा का पात्र मानते हुए, उसके लिए 'प्रायश्चित्त व्रत' का विधान किया है।³⁷ अतः क्षत्रिय का प्रमुख दायित्व समाज में शांति-व्यवस्था स्थापित कर, एक सुनियन्त्रित शासन की स्थापना तथा जनता व राष्ट्र की रक्षा करना था।

वैश्य : समाज में क्रम से ब्राह्मण व क्षत्रिय के उपरान्त वैश्य का द्विजाति के रूप में तृतीय स्थान था। यद्यपि उसका स्थान ब्राह्मण एवं क्षत्रिय की अपेक्षा निम्नतर था तथापि कर्म की दृष्टि से उसकी महत्ता ब्राह्मण, क्षत्रिय से किसी भी प्रकार कम नहीं थी। यह तो सत्य है कि क्षुधा से पीड़ित एवं निर्धन व्यक्ति अपने कर्तव्यों का निर्वहन समुचित रूप से नहीं कर सकता, चाहे वह समाज का कोई भी वर्ग क्यों न हो? अन्न और धन तो उसके जीवन के मूलाधार हैं। अतएव समाज के भरण-पोषण, उसके आर्थिक पक्ष को सुदृढ़ बनाने एवं धन-धान्य की अभिवृद्धि हेतु साधन जुटाने का पूर्ण उत्तरदायित्व वैश्य वर्ग पर था। शंखस्मृति के अनुसार वैश्य के कार्य कृषि करना, पशुओं की रक्षा करना, व्यापार करना, दान देना, वेद पढ़ना तथा विधिवत् यज्ञ करना है।³⁸ मनुस्मृति में शंखोक्त वैश्य कर्मों के साथ सूद लेना' नामक कार्य को भी सम्मिलित किया गया है, जिनमें मुख्य रूप से क्रमभेद प्राप्त होता है।³⁹ महाभारत में तो सूद को छोड़कर इन्हीं कर्मों के साथ शुचितापूर्वक धनार्जन करने, सदाचार, अतिथि-सत्कार, शम, दम, ब्राह्मणों का आदर तथा त्याग पर भी बल दिया गया है। ये कर्म वैश्यों की वैचारिक शुद्धता व निष्कपट आचरण को अभिव्यक्त करते हैं।⁴⁰ इनमें से कृषि करना, पशुपालन एवं वाणिज्य-वैश्यों के जीविका के साधन थे तथा दान देना, वेद पढ़ना एवं विधिवत् यज्ञ करना उनका धर्म था। अतएव क्षत्रिय के सदृश उसे दान देने, वेद पढ़ने एवं यज्ञ करने का अधिकार तो प्राप्त था, किन्तु वेदाध्यापन, यज्ञ कराना एवं दान लेना उसके लिए वर्जित थे, क्योंकि शास्त्रविधान के अनुसार एक ब्राह्मण को ही इन्हें करने का अधिकार था, अन्य किसी द्विजाति को नहीं। वह कृषि, पशुपालन एवं व्यापार के द्वारा ही जीविका चला सकता था। शंखस्मृति में इन कर्मों की विस्तृत व्याख्या उपलब्ध नहीं होती है मात्र कर्मों का निर्देश किया गया है, जबकि मनुस्मृति में इनका विस्तारपूर्वक उल्लेख मिलता है। कृषि-विज्ञान के विषय में कहा गया है कि एक कृषक को बीजों को बोने की विधि, कौन से बीज किस समय में, कैसे खेत में, कितने प्रमाण में, किस प्रकार बोये जायें, खेतों के गुण तथा दोष, माप एवं मापने के उपायों की जानकारी होनी चाहिये। इसके साथ ही उत्पादन के स्रोतों-मणि, मोती, मूंगा, लोहा, कपड़ा, कपूर, नमकादि रस के मूल्य की वृद्धि एवं उसके "स को देशकालानुरूप जानकर आचरण करे। इसके अतिरिक्त उसे वस्तुओं की श्रेष्ठता एवं निम्नता, देशों व स्थानों के गुण-दोष, क्रय- विक्रय के लाभ एवं हानि, पशुओं के बढ़ाने के उपाय, श्रमिकों को वेतन देश, काल एवं परिश्रम के अनुरूप देना, विभिन्न देशों की भाषाओं का ज्ञान, वस्तुओं की सुरक्षा के लिए उचित-अनुचित स्थान इत्यादि की जानकारी होनी चाहिये, जिसके माध्यम से अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके।⁴¹ इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिस प्रकार ज्ञान का संचार कर ब्राह्मण ने, राष्ट्र-सुरक्षा का कार्यभार वहन कर क्षत्रिय ने सामाजिक उत्थान में पूर्ण सहयोग दिया उसी प्रकार पोषक वर्ग के रूप में वैश्य ने धनार्जन कर समाज व राष्ट्रहित में अपना योगदान दिया।

शूद्र : वर्णों के अन्तर्गत शूद्र को अन्तिम स्थान प्राप्त था। ब्रह्मा के पैरों से उत्पन्न होने के कारण मात्र शारीरिक श्रम ही उसका प्रधान कार्य था। ऐसा माना जाता है कि ब्रह्मा ने द्विजों के सेवार्थ ही शूद्रों की रचना की।⁴² अपने इसी कर्म के कारण उसने समाज में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया था, क्योंकि सेवार्थ के अभाव में समाज का गतिशील बने रहना असम्भव है। इसी ने समाज के अन्य वर्गों की अपेक्षित सहायता कर, उन्हें गतिशील बनाया। जिससे सभी वर्ग अपने-अपने धर्म-कर्म का समुचित रूप से निर्वहन करने में समर्थ हो सके।⁴³

यदि प्राचीनकालीन साहित्य पर दृष्टिपात करे तो स्पष्ट होता है कि ये आर्य समाज के अंग तो बन गये थे, किन्तु उनका स्थान अति निम्न था। ऐतरेयब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि “शूद्र दूसरों से अनुशासित होता है, वह किसी की आज्ञा पर उठता है, उसे कभी भी ताड़ित किया जा सकता है।⁴⁴ उसके लिए वेदाध्ययन, उपनयन संस्कार, अग्निहोत्र आदि वैदिक क्रियाओं को करने का निषेध था।⁴⁵ यहाँ तक कि उसके समीप वेदाध्ययन करना भी वर्जित था। गौतम ने कहा है कि यदि शूद्र जानबूझकर स्मरण करने के लिए वेद-पाठ सुने तो उसके कर्णकुहरों को सीसा और लाख से भर देना चाहिये और यदि उसने वेद पर अधिकार कर लिया है तो उसके शरीर को छेद देना चाहिए।⁴⁶ अतएव प्राचीन भारतीय समाज में उसकी स्थिति अच्छी नहीं थी। कालान्तर में उसकी स्थिति में सुधार हुआ। उसे बिना वैदिक मन्त्रोच्चारण के पाकयज्ञ, पञ्चमहायज्ञ, व्रतादि धार्मिक क्रियाओं को करने का अधिकार दिया गया। यद्यपि उसे अपने स्वामी द्वारा दी गई वस्तुओं-जूठा अन्न, पुराने वस्त्र, खाट, बर्तन इत्यादि पर निर्भर रहना पड़ता था तथापि समाज में सदाचार से युक्त नैतिक मूल्यों का द्विजातियों की भांति पालन करने वाले पवित्र वृत्ति सम्पन्न शूद्र को श्रेष्ठ एवं प्रशंसनीय माना गया था। वह अपने सदाचरण एवं कर्म से ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर सकता था।⁴⁷

अधिकांश ग्रन्थों के अनुसार द्विजातियों की सेवा करना ही शूद्र का मुख्य धर्म था।⁴⁸ जबकि शंखस्मृति में तीनों वर्गों की सेवा के अतिरिक्त उसके कार्यक्षेत्र में वृद्धि करते हुए, उसे शिल्पकर्म का भी अधिकार प्रदान किया और क्षमा, सत्य, दम, मन, वचन, कर्म की पवित्रता आदि गुणों को धारण करते हुए, अपने कर्म में रत रहना ही उसका धर्म बताया गया है।⁴⁹ इसी प्रकार कुछ अन्य ग्रन्थों में प्राप्त मत भी शंखस्मृति की साम्यता रखते हैं।⁵⁰ इन विहित कर्मों के अतिरिक्त उसके लिए कुछ धार्मिक कर्मों को करना निषिद्ध था। यद्यपि शंखस्मृति में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु द्विजमात्र के लिए विहित उपनयन संस्कार के वर्णन से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय में शूद्र का उपनयन नहीं होता था, वह वेदाध्ययन एवं यज्ञ नहीं कर सकता था, क्योंकि एक उपनीत के लिए ही इनका विधान था।⁵¹ पर शंखस्मृति में शूद्रों से सम्बन्धित कोई कठोर व्यवस्था उपलब्ध नहीं होती है जिससे तत्कालीन समाज में उनकी अपेक्षाकृत उत्तम स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

वर्गों की आपत्कालीन वृत्तियाँ : - चारों वर्ण यदि अपनी निर्धारित वृत्तियों से जीवन-निर्वाह न कर सके तो वह अन्य किस वर्ण की वृत्ति को स्वीकार करे, इसका निर्देश महर्षि शंख ने नहीं किया है, किन्तु अन्य स्मृतिकारों ने इनकी आपत्कालीन वृत्तियों का स्पष्ट उल्लेख किया है। उनके अनुसार यदि ब्राह्मण स्ववृत्ति से जीवन-निर्वाह न कर सके तो वह क्रम से क्षत्रियवृत्ति एवं वैश्यवृत्ति को अपना सकता था⁵², किन्तु उसके लिए शूद्रवृत्ति (सेवाकर्म) का निषेध था, क्योंकि शूद्रवृत्ति 'श्ववृत्ति के समान मानी गई थी।⁵³ इसी प्रकार क्षत्रिय कृषिकर्म को न करते हुए, वैश्यवृत्ति द्वारा, वैश्य द्विजातियों की जूठनादि को न खाते हुए शूद्रवृत्ति द्वारा तथा शूद्र वैश्यवृत्ति अर्थात् सूपादि कारीगरी के द्वारा जीवनयापन कर सकता था। यद्यपि आपत्काल में सभी वर्ण अपने से निम्न वर्ण की वृत्तियों को अपना सकते थे, किन्तु निम्न वर्ण वाला अपने से उच्च वर्ण की वृत्तियों को नहीं अपना सकता था। मनु ने कहा है कि स्वधर्म निकृष्ट होने पर भी उत्तम होता है और दूसरे का धर्म उत्कृष्ट होने पर भी ग्राह्य नहीं है, परधर्म का पालन करने वाला तत्क्षण ही जातिभ्रष्ट हो जाता है।' यहाँ तक कि जन्म-जन्मान्तरों तक निन्दित योनियों को प्राप्त कर विचरण करता है। यदि चारों वर्ण शास्त्रविहित अपने-अपने निर्धारित कर्मों का पालन करते हैं तो वे उत्तम गति को प्राप्त करते हैं। इसलिये आपत्काल न रहने पर सभी के लिए अपनी निर्धारित वृत्तियों से ही जीवन-निर्वाह करने का विधान था।

इस प्रकार शंखस्मृति में वर्णित वर्णव्यवस्था एक आदर्श समाज का स्वरूप प्रस्तुत करती है। जहाँ प्रत्येक वर्ग को अपनी योग्यता एवं कार्य के आधार पर स्थान प्राप्त था। जिस वर्ण के कार्य एवं भूमिका जितनी महत्वपूर्ण रही, उसे उतना ही उच्च स्थान दिया गया और अपने-अपने दायित्व-निर्वाह के लिए कुछ विशेष अधिकार एवं सुविधाएँ प्रदान की गईं। ये अधिकार

किसी दूसरे वर्ण के अधिकारों का हनन करने के लिए नहीं अपितु स्व-स्व धर्म के रक्षार्थ दिये गये थे। सभी वर्ण एक-दूसरे के सहयोगपूर्वक स्वधर्म का पालन करते थे। यही कारण है कि सभी वर्गों के एक-दूसरे से सम्बद्ध होने पर तत्कालीन समाज प्रतिस्पर्धा जैसी भयावह दोषों से सुरक्षित रहा।

सन्दर्भग्रन्थाः

1. (क) ऋ., 4/50/8 (ख) अथर्व., 5/18/8 (ग) तै.सं., का.1, प्र.7, अनु.3, 3
2. (क) मनु., 11/84, 1/93, 98-101, 2/135, 10/3
(ख) वि.स्मृ., 19/20-22
(ग) परा.स्मृ., 6/52-53
(घ) शा.स्मृ., 1/29-31
(ङ) महा.व.प., 303/16
3. यथा भर्ता प्रभुः स्त्रीणां वर्णानां ब्राह्मणो यथा । शं.स्मृ., 5/7
4. षडङ्गवित्तिसुपर्णो बह्वचो ज्येष्ठसामगः॥
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निर्ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः॥
ब्रह्मदेयानुसंतानो ब्रह्मदेयाप्रदायकः।
ब्रह्मदेयापतिर्यश्च ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः॥
ऋग्यजुःपारगो यश्च साम्नां यश्चापि पारगः।
अथर्वाङ्गिरसोऽध्येता ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः॥ वही, 14/5-7
5. अनध्यायेष्वधीयानाः शौचाचारविवर्जिताः।
शूद्रान्नरससंपुष्टा ब्राह्मणा पङ्क्तिदूषकाः॥
नित्यं योगरतो विद्वान्समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥
ध्यानशीलो यतिर्विद्वान्ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः॥ वही, 14/4, 8
6. यजनं याजनं दानं तथैवाध्यापनक्रियाम्।
प्रतिग्रहञ्चाध्ययनं विप्रः कर्माणि कारयेत् ॥ वही, 1/2
7. अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ मनु. 1/88
8. (क) लि.स्मृ., 36 (ख) परा.स्मृ., 3/45 (ग) शा.स्मृ., 12/16
9. श्रीमद्.गी., 3/10-11
10. प्रयतः कल्यमुत्थाय स्नानो हुतहुताशनः।
11. त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निह्मणः पङ्क्तिपावनः॥
गुरूणां प्रतिकूलाश्च वेदाग्न्युत्सादिनश्च ये।
गुरूणां त्यागिनश्चैव ब्राह्मणाः पङ्क्तिदूषकाः॥ शं.स्मृ., 14/5, 3
12. सायं प्रातश्च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि।
दर्शश्च पौर्णमासश्च जुहुयात् विधिवत् तथा॥
यज्ञैर्वा पशुबन्धैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव च। त्रै

वार्षिकाधिकान्नेन पिबेत् सोममतन्द्रितः ॥

इष्टिं वैश्वानरी कुर्यात्तथा चाल्पधनो द्विजः ।

न भिक्षेत धनं शूद्रात् सर्वं दद्यादभीप्सितम् ॥ शं.स्मृ., 5/15-17 X

13. मनु., 4/10, 26-27, 11/24

14. वृत्तिन्तु न त्यजेद्विद्वानृत्विजं पूर्वमेव तु ।

कर्मणा जन्मना शुद्धं विधिना च वृणीत तम् ।

एतैरेव गुणैर्युक्तं धर्माजितधनं तथा ।

याजयीत सदा विप्रो ग्राह्यस्तस्मात् प्रतिग्रहः ॥ शं.स्मृ., 5/18-19

15. वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजः ।

गृहस्थस्य प्रसादेन जीवन्त्येते यथाविधिः ॥

गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः ।

दाता चैव गृहस्थः स्यात्तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी ॥ वही, 5/5-6

16. (क) मनु., 4/227 (ख) या.स्मृ., 1/200-202 (ग) व.स्मृ., 29/19 (घ) द.स्मृ., 3/24

17. अ.सं., 151

18. द.स्मृ., 3/15-16

19. (क) शं.स्मृ., 5/18-19

(ख) अन्यायधिगतां दत्त्वा सफलां पृथिवीमपि ।

श्रद्धावर्जमपात्राय न कांचिद् भूतिमाप्नुयात् ।

प्रदायशाकमुष्टिं वा श्रद्धा भक्तिसमुद्यात् ।

महते पात्रभूताय सर्वाभ्युदयमाप्नुयात् ॥ देवल, अपरार्क टीका से उद्धृत, पृ.290

20. (क) मनु., 4/186-191 (ख) या.स्मृ., 1/202

21. चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका व्युनानि वस्ते ।

तस्यां सुपर्णा वृषणा नि षेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेयम् ॥

एक सुपर्णः समुद्रमा विवेश स इदं वि श्वं भुवनं विचष्टे ।

तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं माता रेळिह स उ रेळिह मातरम् ॥

सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।

छन्दांसि च दधतो अध्वरेषु ग्रहान्तसोमस्य मिमते द्वादश ॥ ऋ., 10/114/3-5

22. ज्येष्ठसामानि वा एतानि श्रेष्ठसामानि प्रजापतिसामानि ॥ ता.म.ब्रा., अ.21, ख.2, 3,

(एतान्याज्यदोहानि साम्नामध्ये ज्येष्ठानि प्रथमभूतानि खलु तथा श्रेष्ठसामानि गुणैः

प्रशस्तानि तत् कथमिति तदाह आदित एतानि प्रजापतिसामानि अतः प्रजापतेर्येष्ठत्वाच्च

तत्-सम्बन्धादेवान्यान्यपि तथाविधानीत्यभिप्रायः ॥)

23. मनु., 4/147

24. या.स्मृ., 1/198

25. ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयः इति । महर्षि पतञ्जलिप्रणीत,

व्याकरणमहाभाष्य, प्रथम खण्ड, 1/1/1 (आगमपदार्थनिरूपणभाष्य), पृ.16

26. योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ व.स्मू., 3/3
27. उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च॥
स गुरुर्यः क्रियां कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति। शं.स्मू., 3/1-2
28. शं.स्मू., 3/5-10
29. मनु., 2/69, 71, 74, 140
30. (क) क्षतान्नस्त्रास्यते सर्वानित्येवं क्षत्रियोऽभवत् । महा.द्रो.प., 69/2
(ख) क्षताच्च नस्त्रायतीति स तस्मात्क्षत्रियः स्मृतः॥ महा.शा.प., 29/130
(ग) क्षतात् त्राणं क्षतत्राणम्। कल्पतरु, द्वितीय भाग, पृ.252
(घ) क्षतात्किल त्रायत इत्युदनः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः । रघु.महा., 2/53
31. क्षत्रियस्य विशेषेण प्रजानां परिपालनम्। .
राजाज्ञाकारिणश्च ये॥ शं.स्मू., 1/4 तथा 15/22, 5/9
32. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ.113
33. मनु., 11/83, 9/322
34. दानमध्ययनञ्चैव यजनञ्च यथाविधि।
क्षत्रियस्य तु वैश्यस्य कर्मेदं परिकीर्तितम्॥
क्षत्रियस्य विशेषेण प्रजानां परिपालनम्॥ शं.स्मू., 1/3-4
35. मनु., 1/89
36. न व्रतै !पवासैश्च न च यज्ञैः पृथग्विधैः।
राजा स्वर्गमाप्नोति प्राप्नोति परिपालनात् ॥ शं.स्मू., 5/9
37. क्षत्रियस्तु रणे दत्त्वा पृष्ठं प्राणपरायणः।
संवत्सरव्रतं कुर्याच्छित्त्वा वृक्षं फलप्रदम्॥ वही, 17/53
38. दानमध्ययनञ्चैव यजनञ्च यथाविधि।
कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यस्य परिकीर्तितम्॥ वही, 1/3-4
39. पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥ मनु., 1/90
40. (क) दानमध्ययनं यज्ञः शोचेन धनसंचयः।
। महा.शा.प., 60/21, 23
(ख) वैश्यस्य सततं धर्मः पाशुपाल्यं कृषिस्तथा।
अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च॥
वाणिज्यं सत्पथस्थानमातिथ्यं प्रशमो दमः।
विप्राणां स्वागतं त्यागो वैश्यधर्मः सनातनः॥

महा.अनु.प., 128/53-54 (दानधर्मपर्व-उमामहेश्वरसंवादः)

41. मनु., 9/329-331, 333

42. मनु., 8/413-414

43. तथैव शूद्रा विहिता : सर्वधर्मप्रसाधकाः।

शूद्रश्च यदि ते न स्युः कर्मकर्ता न विद्यते ॥ महा.अनु.प., 141/60 तथा विद्या, परशुराम
लक्ष्मण, महाभारतस्य- श्लोकपादसूची, द्वितीय भाग, पृ.1310

44. (शूद्रोः) अन्यस्य प्रेष्यः कामोत्थाप्यः यथाकामवध्यः। ऐत.ब्रा., पश्चि.7, अ.5, 29

45. (क) शूद्रोः मनुष्याणामश्वः पशूनां तस्मात्तौ भूतसंक्रामिणावश्वश्च शूद्रश्च तस्माच्छूद्रो
यज्ञेनवक्लृप्तः। तै.सं., का.7, प्र.1, अनु.1, 6 (ख) जैमिनि, 1/3/25-28

46. अथ हास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणमुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेदः। गौ.
ध., द्वितीय प्रश्नः, तृतीय अध्यायः, सू.4

47. (क) मनु., 2/137, 10/124-128 तथा 9/335 (ख) महा.शा.प., 60/37

48. (क) गौ.ध., द्वितीय प्रश्नः, प्रथम अध्यायः, सू.57 (ख) मनु., 1/91, 8/410, 10/122-123
(ग) बृ.परा.स्मृ., 4/216, 222 (घ) ल.हा.स्मृ., 2/11 (1) महा.अनु.प., 141/57 तथा
महा.उ.प., 29/24 (च) श्रीमद्.गी., 18/44 का उत्तरार्ध

49. शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वशिल्पानि चाप्यथ।

क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः॥ शं.स्मृ., 1/5

50. (क) या.स्मृ., 1/120 (ख) वि.स्मृ., 2/8, 14 (ग) कौ अर्थ., 1/3/3 (विनयाधिकारिक
प्रथममधिकरणम्) (घ) अ.पु., 151/9 का उत्तरार्ध

51. गर्भाष्टमेऽब्दे कर्तव्यं ब्राह्मणस्योपनायनम्।

गर्भादिकादशे राज्ञो गर्भान्तु द्वादशे विशः॥

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।

आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च॥ शं.स्मृ., 2/6 तथा 3/1

52. शं.लि.स्मृ., गृ.र., पृ.324 पर उद्धृत (ख) मनु., 1/81-82 (ग) या.स्मृ., 3/35

53. मनु., 4/4,6